जनप्रतिनिधियों की सीरत, जनमत एवं लोकतंत्र

संजय लोढ़ा

सार संक्षेप : प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य यह जानने का प्रयास करना है कि हमारे निर्वाचित (लोकसभा सदस्यों) जनप्रतिनिधियों की सीरत क्या है और चुनावी व्यवस्था के प्रति आमजन का क्या रुख है। निर्वाचित प्रतिनिधियों की सीरत पर प्रकाश डालने के लिए हम यहां पंद्रहवें लोकसभा चुनाव के प्रत्याशियों और विजेताओं के आर्थिक और आपराधिक आंकड़ों का उपयोग कर रहे हैं।[1] आम जनता चुनावी व्यवस्था के बारे में क्या सोचती है यह जानने के लिए हम राष्ट्रीय स्तर पर किए गए चुनावोपरांत सर्वेक्षण का सहारा लेंगे।[2] आंकड़ों के दोनों समूहों का विश्लेषण एक अजीबोगरीब स्थिति पैदा करता है जहां एक ओर चुनावी राजनीति में अपराधिक और धनाढ्य राजनेताओं की संख्या बढ़ती जा रही है वहीं दूसरी ओर मतदाताओं का यह मानना है कि दागी राजनेताओं की जगह स्वच्छ छवि के नेताओं को चाहते हैं। जहां मतदाता यह सोचते

हैं कि चुनावों के दौरान धन और बाहुबल का दुरुपयोग उनके मताधिकार को प्रभावित नहीं करता है वही चुनाव आयोग के आंकड़े यह साबित करते हैं कि विपन्न की तुलना में संपन्न प्रत्याशी के जीतने की संभावना अधिक होती है। यह भी त्रासदी है कि सरकारी (चुनाव आयोग, सर्वोच्च न्यायालय, सतर्कता आयोग, सूचना आयोग) और गैर सरकारी संगठन (मीडिया, जन आंदोलन, स्वयंसेवी संगठन) जितना सक्रिय हो रहे हैं उससे अधिक अनुपात में दागी व्यक्ति राजनीति में आ रहे हैं। इन विरोधाभासों का हमारे लोकतंत्र पर क्या असर पड़ रहा है? क्या मतदाता के समक्ष उचित विकल्पों का अभाव है? क्या हमारे लोकतंत्र में स्वच्छ छवि के नेताओं का कोई भविष्य नहीं है? अगर ऐसा है तो चुनावी सुधारों के क्रम में और क्या किया जाना चाहिए जिससे लोकतंत्र में तंत्र को लोक से जोड़ा जा सके।

आलेख को तीन भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में हम 2009 के लोकसभा चुनावों के उम्मीदवारों और विजेताओं की आर्थिक और आपराधिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालेंगे। भाग दो में यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि चुनावी व्यवस्था के प्रति मतदाताओं की क्या सोच है और लेख के अंतिम भाग में उभरते हुए बिंदुओं का विश्लेषण किया जाएगा।

प्रथम भाग

अगस्त 2010 में हुए लोकसभा सत्र के दौरान हमारे माननीय सांसदों में यदि किसी मुद्दे को लेकर सबसे कम बहस हुई तो वह मुद्दा था उनकी वेतन वृद्धि का। सभी दलों के सांसद सहमत थे कि वेतन वृद्धि तो होनी चाहिए। बहस केवल इतनी थी कि उनका मासिक वेतन 50,000 रुपए हो या 80,000 रुपए। जहां सारा देश मूल्य वृद्धि की मार से विचलित था वहीं सांसद इस समस्या को दरकिनार करते हुए अपने वेतन और भत्तों को लेकर अधिक परेशान थे। परिणामस्वरूप, एक ईमानदार प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिमंडल ने सांसदों के वेतन और भत्तों से संबंधित बिल का अनुमोदन कर दिया। तालिका 1 में एक तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है :

तालिका 1

सांसदों को मिलने वाला वेतन और भत्ते

मद	तब रुपए	अब रुपए
मासिक वेतन	16,000	50,000
मासिक कार्यालय खर्चा	20,000	40,000
क्षेत्रीय भत्ता	20,000	40,000
वाहन क्रय हेतु ब्याज रहित ऋण	1,00,000	4,00,000
प्रति किमी. वाहन भाड़ा दर	13	16
पेंशन प्रतिमाह	8000	20,000

स्रोत : Times of India Indiatimes. com/India/Value-of-MPs-now-pay-package

यदि उपरोक्त मदों के अलावा अन्य सुविधाओं जैसे दिल्ली में बंगला/फ्लैट, हवाई/रेल यात्रा आदि को जोड़ा जाए तो फ्लैट में रहने वाले सांसद का वेतन (भाड़ा-भत्ते सहित) 57 लाख है और बंगले में रह रहे सांसद का राष्ट्रीय बोझ 9 करोड़ 27 लाख रुपए है।[3] इतना ही नहीं संसदीय समिति ने सिफारिश यह की है कि सांसदों का प्रतिमाह का वेतन 80,001 रुपए होना चाहिए। वह दिन दूर नहीं जब सर्वसम्मति से इस सिफारिश को मान लिया जाएगा।

ऐसा नहीं है कि अपने वेतन और भत्तों को लेकर सांसद इसलिए विचलित हैं क्योंकि उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि कमजोर है। तालिका 2 इस भ्रांति को दूर करती है कि हमारे निर्वाचित सांसद आर्थिक रूप से कमजोर हैं :

तालिका 2

करोड़पति सांसद

	2004 की लोकसभा	2009 की लोकसभा	वृद्धि	% वृद्धि
करोड़पति सांसदों की संख्या	156	315	159	102%
सांसदों की औसत संपत्ति	1.86 करोड़	5.33 करोड़	3.46 करोड़	186%

स्रोत : नेशनल इलेक्शन वॉच, 2009

315 करोड़पति सांसदों का दलीय आधार रोचक आंकड़े प्रस्तुत करता है। इसमें से 146 कांग्रेसी, 59 भाजपाई, 14 समाजवादी, 13 बसपाई और द्रुमक, 9 शिवसैनिक और 7-7 जनता दल (यू) और तृणमूल के हैं। 71 प्रतिशत कांग्रेसी, 82.4 प्रतिशत शिवसेना के सांसद, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के 78 प्रतिशत और शिरोमणि अकाली दल के सभी सांसद करोड़पति हैं। राजस्थान के 25 में से 14 सांसद इस श्रेणी में आते हैं। यह बात तो हुई निर्वाचित सांसदों के बारे में। यदि हम 2009 के लोकसभा चुनाव के उम्मीदवारों पर नजर डालें तो पता चलता है कि कुल 1810 उम्मीदवारों में से 16 प्रतिशत के पास एक करोड़ से अधिक की परिसंपति थी। फिर भी 62 प्रतिशत उम्मीदवारों के पास आयकर विभाग का स्थायी खाता संख्या कार्ड (PAN CARD) नहीं था।

प्रश्न यह उठता है कि क्या उम्मीदवारों की आर्थिक स्थिति और उनके चुनाव जीतने की संभावना के बीच सकारात्मक संबंध है? क्या लोकतंत्र में सभी को समान अवसर हैं या समृद्धशालियों का वर्चस्व है? कहीं भारतीय लोकतंत्र का स्वरूप अरस्तू द्वारा प्रतिपादित भ्रष्ट धनिकतंत्र की भांति तो नहीं हो रहा? क्या मिशेल द्वारा बताए 'अल्पतंत्र के लौह नियम' हमारे यहां दृष्टिगोचर हो रहे हैं? तालिका 3 में यह स्पष्ट है कि अधिक परिसंपति वालों की चुनाव जीतने की संभावना भी अधिक होती है। चुनावों में जीत और संपति के मूल्य में सकारात्मक अंतर्संबंध है।

एक रोचक तथ्य यह भी है कि पांच वर्षों के कार्यकाल के दौरान सांसदों के संपति की लागत में अप्रत्याशित वृद्धि होती है। संभवतः देश में कोई ऐसा व्यवसाय नहीं है जिसमें पांच वर्षों में औसत वृद्धि लगभग 300 प्रतिशत है। 2004 की लोकसभा में से 304 सांसदों ने पुनः 2009 में भी चुनाव लड़ा। 2004 के चुनावों में इन सांसदों द्वारा दिए गए ब्यौरों के अनुसार इनकी संपति का औसत मूल्य 1.92 रुपए करोड़ था जो कि 2009 के चुनावों के समय बढ़कर 4.8 करोड़ रुपए हो गया, अर्थात 289 प्रतिशत की वृद्धि। ये सब आंकड़े यह बताते हैं कि धनाढ्य ही चुनाव जीत सकते हैं और चुनाव जीतकर वे अपने आर्थिक आधार को और भी अधिक सशक्त कर लेते हैं। राजनीति के व्यवसायीकरण का इससे सटीक उदाहरण नहीं मिल सकता।

तालिका 3

परिसंपति के आधारों पर उम्मीदवारों के चुनाव जीतने की संभावना

परिसंपतियों का मूल्य	उम्मीदवारों की जनसंख्या	विजेताओं की संख्या	विजेताओं का प्रतिशत
5 करोड़ से अधिक	343	112	32.65
50 लाख से 5 करोड़ तक	1592	294	18.47
10 लाख 50 लाख तक	1911	120	6.28
10 लाख से कम	3964	17	0.43

स्रोत : नेशनल इलेक्शन वॉच, 2009

राजनीति का व्यवसायीकरण हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक विकृत और स्वरूप है। लेकिन इससे भी अधिक विकृत और घिनौनी तस्वीर तब सामने आती है जब हम राजनीति के अपराधीकरण पर नजर डालते हैं। 2009 के लोकसभा चुनावों में 16 प्रतिशत उम्मीदवार किसी न किसी आपराधिक मुकदमे में लिप्त थे। जब हम निर्वाचित सांसदों का ब्यौरा लेते हैं तो स्थिति और भी अधिक भयावह हो जाती है।

तालिका 4

लोकसभा सांसदों की आपराधिक पृष्ठभूमि का तुलनात्मक ब्यौरा

	2004 की लोकसभा	2009 की लोकसभा	वृद्धि	% वृद्धि
लंबित आपराधिक रिकॉर्ड वाले सांसद	128	162	34	26.56
कुल लंबित आपराधिक मामले	429	522	93	21.68
गंभीर लंबित आपराधिक मामले वाले सांसद	58	76	18	31.03
कुल गंभीर आपराधिक मामले	296	275	-21	-7.09

स्रोत : नेशनल इलेक्शन वॉच, 2009

2009 के चुनावों के पश्चात् गठित लोकसभा में ऐसे सांसदों की संख्या में 31.03 प्रतिशत वृद्धि हुई है जिनके विरुद्ध गंभीर आपराधिक मामले न्यायालय में विचाराधीन हैं। गंभीर अपराधों की श्रेणी में जो मामले आते हैं वे हैं हिंसा, चोरी, हत्या, डकैती, अगवा करना, बलात्कार, जालसाजी, झूठी शपथ लेना, झूठी गवाही देना तथा समुदायों के बीच झगड़े कराना और द्वेष पैदा करना। जो दल (अर्थात भाजपा) सबसे अधिक राजनीति में शुचिता की बात करता है, उसी के 19 प्रतिशत सांसद गंभीर अपराधों में लिप्त हैं। इसी तरह 38 प्रतिशत भाजपा सांसदों के विरुद्ध विभिन्न न्यायालयों में आपराधिक

मामले चल रहे हैं। राज्यों में उत्तर प्रदेश (31%), महाराष्ट्र (26%), बिहार (18%), आंध्र प्रदेश (11%) एवं गुजरात (11%) वे राज्य हैं जहां के सांसदों का बड़ा हिस्सा आपराधिक प्रवृत्ति का है। राजस्थान से ऐसे सांसदों का हिस्सा केवल 2 प्रतिशत है।

द्वितीय भाग

राजनीति के व्यवसायीकरण और अपराधिकरण की जो नंगी तस्वीर उभरकर आई है, वह भारतीय लोकतंत्र के लिए अवांछित और अनुचित है। इससे यह व्यवस्था उन लोगों की पहुंच से बाहर हो रही है जो इसमें सुधार लाना चाहते हैं। विचारणीय बिंदु यह है कि इस बिगड़ती हुई व्यवस्था के बारे में आम लोगों की क्या सोच है? क्या वे मानते हैं कि चुनावों में वोट खरीदने के लिए मतदाताओं को प्रलोभन दिए जाते हैं? क्या मतदाता इन प्रलोभनों का शिकार हो जाते हैं? क्या मतदाता आपराधिक मामलों में लिप्त उम्मीदवार को वोट देना पसंद करते हैं? और क्या मतदाता यह मानते हैं कि देश में चुनाव निष्पक्ष रूप से होते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर हम मतदाताओं से ही लेते हैं। 2009 के लोकसभा चुनावों के उपरांत एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण में मतदाताओं से ऐसे ही कुछ सवाल पूछे गए थे। उनके उत्तरों से लगता है कि भारतीय लोकतंत्र में उनकी अगाध आस्था है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय मतदाता यह मानते हैं कि देश में चुनाव निष्पक्ष रूप से किए जाते हैं। तालिका 5 में यह मत उभरकर आता है।

तालिका 5

चुनावों में निष्पक्षता या धांधली

	संख्या	प्रतिशत
चुनाव निष्पक्ष होते हैं	2600	35.90
कुछ हद तक निष्पक्ष होते हैं	2645	36.50
चुनावों में धांधली होती है	692	9.5
कोई मत नहीं	1313	18.10
कुल उत्तरदाता	7249	100

स्रोत : NES, 2009, CSDS

प्रश्न : भारत में जिस तरह चुनाव कराए जाते हैं उनके बारे में आपकी क्या राय है क्या चुनाव निष्पक्ष होते हैं, कुछ हद तक निष्पेक्ष होते हैं या चुनावों में धांधली होती है?

लगभग तीन चौथाई मतदाता यह मानते हैं कि भारत में चुनाव निष्पक्ष रूप से होते हैं और केवल 10 प्रतिशत का मत है कि चुनावों में धांधली होती है। अभिप्राय यह है कि मतदाताओं की चुनाव प्रबंधन से आस्था है और चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवालिया निशान नहीं लगाया जा सकता है। एक ऐसे समय में जबकि लोगों की अधिकांश सरकारी संस्थाओं में आस्था कम हो रही है चुनाव आयोग में अभिव्यक्त आस्था महत्वपूर्ण है।

यह बात आम तौर पर स्वीकार की जाती है कि राजनीतिक दल और उम्मीदवार चुनावी प्रचार के दौरान लुभावने वादों के साथ मतदाताओं का मत हासिल करने के लिए उन्हें नकद राशि या फिर वस्तु में प्रलोभन देते हैं। लेकिन इस धारणा की

तथ्यात्मक पुष्टि हेतु 2009 लोकसभा चुनाव सर्वेक्षण के दौरान मतदाताओं से यह पूछा गया था कि क्या उनके इलाके में लोग पार्टी या उम्मीदवार से पैसे, खाने-पीने की चीजें या शराब लेते हैं तो लगभग 46 प्रतिशत ने इसे स्वीकार किया, 24 प्रतिशत ने इंकार किया और 30 प्रतिशत ने कोई राय व्यक्त नहीं की। लेकिन प्रलोभन स्वीकार करने का अभिप्राय यह तो नहीं हो सकता कि मतदाता वोट भी उसी को देता हो जिससे उसने कुछ हासिल किया हो। 41 प्रतिशत मतदाता कहते हैं कि वोट तो वे अपनी इच्छा के अनुसार ही देते हैं। 16 प्रतिशत प्रलोभन का कर्ज चुकाते हैं तो 43 प्रतिशत कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। उपरोक्त आंकड़े यह दर्शाते हैं कि चुनावों में प्रलोभन (Cash For Vote) देना और लेना एक कटु सत्य है पर यह जरूरी नहीं कि मतदान का आधार भी प्रलोभन होता है। पर यह निर्विवाद है कि चुनावों में धन का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है।

एक बड़ी बहस शासन के क्षेत्र में यह भी है कि मतदाता कैसे नेता में अपना समर्थन व्यक्त करते हैं। क्या वोट उसी को मिलता है जो बहुत ईमानदार, सीधा साधा और सभी को साथ लेकर चलने वाला है या जनता ऐसे नेता का चाहती है जो भ्रष्ट, आपराधिक और घमंडी हो पर जिस तक लोगों की पहुंच हो और जो लोगों के काम करवा सके? वृहद स्तर पर यह बहस नेतृत्व के गुणों से संबंधित है। 2009 के लोकसभा चुनावों में किए गए सर्वेक्षण में इस बहस पर मतदाताओं के रुझान को जानने का प्रयास किया गया था। तालिका 6 में जनमत का रुझान अत्यंत रोचक है :

तालिका 6

नेतृत्व के गुण : आप किस नेता को वोट देंगे

वाक्य	वाक्य 1 से सहमत	वाक्य 2 से सहमत	कोई सहमत नहीं
वाक्य 1 : जिससे मिला जा सकता हो, लेकिन जो भ्रष्ट नेता है। वाक्य 2 : नेता जो बहुत ईमानदार है, लेकिन उससे मिला नहीं जा सकता	24.4	48.1	27.5
वाक्य 1 : जो आपराधिक मामलों में लिप्त हो पर जिस पर काम करने के लिए विश्वास किया जा सकता हो। वाक्य 2 : नेता जो सीधा-साधा है, लेकिन हमेशा काम नहीं करा सकता।	36.1	34.8	29.1
वाक्य 1 : एक ताकतवर नेता जो किसी और की बात नहीं सुनता है। वाक्य 2 : नेता जो सभी से सलाह मशविरा करता है, लेकिन कमजोर है।	26.9	43.4	29.8

स्रोत : NES, 2009, CSDS

इस सारणी से यह स्पष्ट है कि मतदाता ऐसे नेता को प्राथमिकता देते हैं जो ईमानदार हैं, सभी की राय लेकर चलना चाहते हैं और जो काम करा सकते हैं। भ्रष्ट और घमंडी नेताओं के प्रति लोगों की सहानुभूति कम है। लेकिन इन आंकड़ों पर संतोष नहीं करना चाहिए क्योंकि एक चौथाई से अधिक मतदाताओं ने अपनी राय अभिव्यक्त नहीं की है। विचारणीय प्रश्न यह है कि लेख में उद्धृत चुनाव आयोग की जानकारी और सर्वेक्षण से प्राप्त जनमत के बीच की खाई को कैसे पाटा जाए। ऐसा क्यों हो रहा है कि जनता को उन नेताओं को चुनना पड़ रहा है जिन्हें वह चाहती नहीं है? क्या यही कारण है कि राष्ट्रीय चुनावों में मतदाताओं की संख्या कम रहती है? लेकिन यह कैसा लोकतंत्र है जिसमें कुल पंजीकृत मतदाताओं में से केवल 17 प्रतिशत के समर्थन के आधार पर कांग्रेस को 543 में से 206 स्थानों पर जीत हासिल हुई है अर्थात कुल सदस्य संख्या का 38 प्रतिशत। इसी तरह 11 प्रतिशत मत प्राप्त कर के भाजपा को 21 प्रतिशत स्थान प्राप्त हुए हैं।

व्यवस्था की इन विकृतियों को देखते हुए यह आवश्यक है कि उचित सुधारों के माध्यम से लोकतंत्र को अधिक सशक्त किया जा सके।

तृतीय भाग

भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था का उत्तरोत्तर व्यवसायीकरण और अपराधिकरण हो रहा है। लोकतांत्रिक दौड़ सभी नागरिकों के लिए समान नहीं है। जहां एक ओर नागरिक ईमानदार, कर्मठ और स्वच्छ छवि के नेता चाहते हैं वहीं जो निर्वाचित होकर आ रहे हैं वो जन कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे। लेकिन आखिर उनका चयन तो जनता के द्वारा ही किया जा रहा है। नागरिक समाज के आग्रह पर गत वर्षों से सरकार द्वारा जो कदम उठाए गए उनका बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। निसंदेह आज मतदाता के पास उम्मीदवारों के बारे में काफी जानकारी है पर फिर भी उचित विकल्पों के अभाव में या तो मतदाता मतदान के प्रति उदासीन हो जाता है या फिर ऐसे प्रत्याशियों का समर्थन करता है जो उसकी नजरों में अपेक्षाकृत कम बुरा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राजनीतिक और चुनावी सुधारों का एक और दौर शीघ्र ही क्रियांवित किया जाए। सुधार के निम्न बिंदु प्रस्तावित किए जाते हैं :

- ❖ यह सुनिश्चित किया जाए कि गंभीर आपराधिक मामले में लिप्त नेताओं को चुनाव नहीं लड़ने दिया जाए।
- ❖ चुनावों को धन बल से दूर करने के लिए राज्य द्वारा प्रत्याशियों के समान खर्च का वहन किया जाए।
- ❖ मतदाताओं को मतदान में 'कोई नहीं' का विकल्प दिया जाए।
- ❖ चुनावी अनियमितताओं के खिलाफ अधिक सख्त कार्यवाही की जाए।
- ❖ चुनाव आयोग और विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित सुधारों को लागू किया जाए।

राजनीतिक स्तर पर यह आवश्यक है कि मतदाताओं को अधिक से अधिक सूचना दी जाए जिससे वे उचित निर्णय लेने में समक्ष हों। सरकारी निकायों द्वारा क्रियांवित सुधारों की एक सीमा होती है लेकिन राजनीतिक स्तर पर मतदाताओं की जागरूकता में वृद्धि और क्षमता संवर्द्धन राजनीतिक और चुनावी सुधारों का एक दीर्घकालीन उपाय है। उचित जानकारी के अभाव में उचित निर्णय नहीं लिया जा सकता। चुनावी लोकतंत्र की बुनियाद नागरिकों का विवेकपूर्ण निर्णय है।

पाद टिप्पणी :

1. नेशनल इलेक्शन वॉच (NEW) और ऐसोसियेशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्मस (ADR) द्वारा 2009 के लोकसभा चुनावों के उम्मीदवारों और विजेता सांसदों के आर्थिक और आपराधिक रिकॉर्ड पर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई जिसका आधार वे सूचनाएं हैं जो उम्मीदवारों ने शपथ पत्र पर चुनाव आयोग को प्रदान की है।
2. दिल्ली स्थित विकासशील समाज अध्ययन पीठ (CSDS) द्वारा 2009 के लोकसभा चुनावों का चुनावोपरांत सर्वेक्षण किया गया था। यह सर्वेक्षण राष्ट्रव्यापी था जिसमें 36641 मतदाताओं से साक्षात्कार किए गए थे।
3. Times of India : inditimes. com/india